Vol. 7, Issue 4, January 2018 ISSN 2249-894X

REVIEW OF RESEARCH

An International Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

Impact Factor: 5.2331

UGC Approved Journal No. 48514

Chief Editors
Dr. Ashok Yakkaldevi
Ecaterina Patrascu
Kamani Perera

Associate Editors
Dr. T. Manichander
Sanjeev Kumar Mishra

REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2018

सत्यार्थप्रकाश में निहित राजनैतिक मूल्यों की अवधारणा

डॉ. सुरेश कुमार
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
बी.एल.जे.एस. महाविद्यालय तोषाम (भिवानी)

प्रस्तावना–

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ की रचना 1872 में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की। स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी, तथापि इस ग्रन्थ की उन्होने हिन्दी में रचना की। वे जानते थे कि भारतवर्ष में हिन्दी भाषी अधिक है, शायद इसी कारण सत्यार्थ प्रकाश की भाषा हिन्दी ही रखी। स्वामी जी पूरे देश में घूम–घूमकर शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान कर रहे थे। उनके अनुयायियों ने अनुरोध किया कि यदि इन शास्त्रार्थों एवं व्याख्यानों को लिपिबद्ध कर दिया जाए तो ये अमर हो जायेंगे। सत्यार्थप्रकाश की रचना उनके अनुयायियों के इस अनुरोध के कारण ही सम्भव हुई। सत्यार्थप्रकाश की रचना का मुख्य उद्धेश्य आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार था। इसके साथ–साथ उस समय हिन्दू शास्त्रों का गलत अर्थ निकालकर हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को बदनाम करने का षड्यन्त्र भी चल रहा था। इसी को ध्यान में रखकर स्वामी दयानन्द ने इसका नाम सत्यार्थप्रकाश (सत्य+अर्थ+प्रकाश) अर्थात् सही अर्थ पर प्रकाश डालने वाला (ग्रन्थ) रखा। सत्यार्थप्रकाश में चौदह समुल्लास हैं। इसमें बाल–शिक्षा, अध्ययन–अध्यापन, विवाह एवं गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, राजधर्म, ईश्वर, सृष्टि उत्पत्ति, बंध–मोक्ष, आचार–अनाचार, ईसाईमत्त तथा इस्लाम के बारे में स्वामी जी ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती एक उच्चकोटि के संन्यासी होते हुए भी समाज और राष्ट्र के दायित्वों से विमुख नहीं थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के इतने धनी थे कि कोई विषय स्वामी जी से अछूता नहीं रहा है। स्वामी जी की मान्यताओं का आधार पूर्णरूप से वेद रहा है। उनकी राजनीति सम्बन्धी चिन्तन का आधार भी वेद और धर्म ही है। स्वामी दयानन्द सत्य के पथ पर सदैव आरूढ़ रहे और उनकी दृष्टि में सत्य ही सर्वोपरि ग्रहण करने योग्य है। उनके राजनीति सम्बन्धी चिन्तन का आधार भी यही सत्य और धर्म है। स्वामी जी ने अन्य क्षेत्रों के साथ–साथ राजनीति के क्षेत्र को भी अत्याधिक महत्वपूर्ण माना है।

राजनीति किसी न किसी रूप में हमारे जीवन को अवश्य प्रभावित करती है। राजनीति में दो पद है– राज्य एवं नीति। 'राज्य' पद राज+न्यत् से बना है, इसका शाब्दिक अर्थ है राजा का (क्षेत्र)। नीति शब्द 'नी' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर बना है। नीति का अर्थ है 'उचित निर्देशन', यह राज्य से सम्बन्धित कार्यों के विषय मे उचित या अनुचित का परिज्ञान कराने वाली नीति है। इस नीति के उचित होने पर राज्य का स्थायित्व दृढ़ होता है, और अनुचित होने पर राज्य का विनाश होता है। अतः यह राज्य की शक्ति का नियन्त्रण और आधिपत्य करने की क्रिया है राज्य को युगपुरूष दयानन्द जी ने राजा की उपाधि दी है। अपने अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में आर्यों के चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे, अब इनके वंशजो का अभाग्योदय होने से राज भ्रष्ट होकर विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहें है'' अपसी फूट मतभेद विद्या न पढ़ना –पढ़ाना, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, बाल्यवस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषण आदि कुकर्म हैं।[1]

राजा के गुण एवं कर्त्तव्यः–

स्वामी जी ने, राजा कैसा होना चाहिए के बारे में उनका कहना था कि, राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत के समान शीघ्र ऐवश्वर्य, वायु के समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने वाला, यम पक्षपातरहित न्यायधीस के समान वर्तने वाला, सूर्य के समान न्याय, धर्म विद्या का प्रकाशक, अग्नि के दुष्टों को भस्म करने वाला, वरूण अर्थात् बांधनेवाल। के समान दुष्टों को बांधने वाला, चन्द्र सदृश श्रेष्ठ पुरूषों को आनन्द देने वाला, धनाध्यक्ष के समान कोशों को पूर्ण करने वाला हो। जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर एवं भीतर मनों को अपने तेज से तपाने वाला, इस पृथ्वी पर कोई भी जिसको कठोर दृष्टि से देखने में समर्थ न हो।[2] जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु सूर्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों को बांधने वाला, एवं ऐश्वर्यशाली हो।

ऋग्वेद के अनुसार राजा और प्रजा मिलकर सुखप्राप्ति[3] और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा–विद्या सभा, धर्मसभा और राज्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियो को सब और से विद्या, स्वातन्त्रय, धर्म, सुशिक्षा और धन आदि से अलंकृत करे। त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः संदासि।[4] प्रजाजनों को चाहिए कि जो परमैश्वर्यशाली, शत्रुओं को जीतने वाला, सर्वोपरि विराजमान प्रकाशमान हो, साभापति होने के अत्यन्त योग्य, प्रशंसनीय, गुण, कर्म, स्वभाव युक्त, वन्दनीय, समीप जाने और शरण लेने योग्य सबका माननीय हो, उसे ही राजा नियुक्त करें।[5] एक आदर्श राजा वही होता है जो न्याय का प्रचार कर्त्ता, सबका शासन कर्त्ता, प्रजारक्षक, पापनाशक, पक्षपात रहित न्याय करने वाला, सत्यवादी विचारक, बुद्धिमान, धर्म अर्थ और काम की सिद्धि में निपुण हो,[6] पवित्र आत्मा, सत्याचार सत्पुरूषों का संगी, नीतिशास्त्र के अनुकूल चलने वाला, श्रेष्ठ पुरूषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान हो।[7] एक उत्तम राजा को चाहिए कि अपने राज्य में सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्यधिकार, दण्ड व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य, सर्वलोक आधिपत्य इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण, वेद शास्त्रों में निपुण, विद्यावान, धर्मात्मा, सुशील जनों को स्थापित करे अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्यधिकारी मुख्य न्याय धीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहिए।[8] स्वामी जी के अनुसार एक आदर्श राजा को चाहिए कि वह कभी भी कामज दश और क्रौधज आठ दुष्ट व्यसनों में न पड़े तथा न हि प्रजाजनों को उनमें फँसने दे।[9] क्योंकि कामज व्यसनों में फँसकर राजा अर्थ एवम् धर्म से रहित हो जाता है।[10] अतः राजा एवं प्रजाजनों को चाहिए कि वे इन दुर्व्यसनों से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण, कर्म एवं सदाचार युक्त अच्छे–अच्छे काम करें। क्योंकि इन दुर्व्यसनों की अपेक्षा मर जाना श्रेष्ठ है। दुर्व्यसन मृत्यु से भी अधिक कष्टदायी होते हैं।

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्थधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।। मनु 7/52

स्वामी जी के अनुसार एक उत्तम राजा का यह भी कर्त्तव्य है कि अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे।। इसके अतिरिक्त राजा निष्कपट, प्रजारक्षक, शत्रु के किये हुए छल को जानने वाला, शत्रु की कमजोरी को जानने वाला, अपनी निर्बलता को छुपाने वाला, बलवृद्धि कर सिंह के समान पराक्रम वाला, चीते के समान शत्रुओं को पकड़ने वाला डाकू चारों को मारकर राज्य की रक्षा करने वाले हो।।[12] राजा राज कार्य कि सिद्धि के लिए ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से राजकार्य यथावत् सिद्ध हों तथा राज्यपालन में सब प्रकार से तत्पर रहे जिससे सुख वृद्धि होती रहे।[13]

राज्य के सुचारू रूप से संचालन के लिए एक आदर्श राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि दो, तीन, पाँच और सौ ग्रामों के बीच में सेना का एक विभाग अर्थात् रक्षा चौकी रखे जिसमें यथा योग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरूषों को रखकर सब राज्य कार्यपूर्ण हो सके। प्रत्येक गाँव में एक–एक प्रधान पुरूष रखे, फिर उन्हीं दश गाँवों के ऊपर दूसरा, बीस गाँवों पर तीसरा, सौ गाँवों पर चौथा एवं सहस्र गाँवों के ऊपर पाँचवा पुरूष रखे ताकि सारे कार्य सुचारू रूप से चले।[14] अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राममें पटवारी या सरपंच, उन्ही दश गाँवों में एक थाना, फिर बड़ा थाना, उन थानों पर एक तहसील और दश गाँवों में एक थाना, फिर बड़ा थाना, थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है। बड़े–बड़े नगरों मे एक–एक विचार करने वाली सभा नियुक्त कर उसके लिए एक सुन्दर व आकर्षक भवन का निर्माण करे ताकि विद्यावृद्ध वहाँ बैठकर राजा एवं प्रजा की उन्नति नियमो का गठन करें।[15]

प्रातः काल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निक्षेत्र कर वा करा सब मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल उनकों हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा अर्थात् कवायद कर करा। सब घोड़े, हाथी, गाय आदि के स्थान, शास्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैधालय धन के कोषों को देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हों उनको निकाल, व्यायामशाला में जा, व्यायाम करके भोजन के लिए 'अन्तः पुर' अर्थात पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे और भोजन में अनेक प्रकार के अन्न व्यंजन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिस से सदा सुखी रहे, इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे।[16]

मन्त्रियों के गुण तथा कर्त्तव्यः–

राज्य को सुचारू रूप से चलाने में मन्त्री पद अति महत्वपूर्ण है। मन्त्री कैसे होने चाहिए तथा उनके क्या कर्त्तव्य होना चाहिए? यहाँ प्रस्तुत है :–

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न वेदादि शास्त्रवेता, शुरवीर, लक्ष्ययुक्त कुलहीन, सुपरीक्षित, सात या आठ धार्मिक चतुर मन्त्री होने चाहिए। राजा को चाहिए कि वे राजयकार्यों में कुशल विद्वान मन्त्रियों के साथ समन्वय स्थापित करके किसी से संधि, किसी से विग्रह, (विरोध) काल, स्थान एवं स्थिति को देखकर चुप रहना, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना, जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना, मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा करना, जो–जो देश प्राप्त हो उस–उस में शान्ति स्थापन उपद्रव रहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति करें।[17] इसके अतिरिक्त राजा को चाहिए वह अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनयक्रिया अर्थात् जिसमें न्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के अधीन कोश और राजकार्य तथा सभा के अधीन सब कार्य और दूत के अधीन किसी से मेल व विरोध करने का अधिकार देवें।[18] राजा एवं मन्त्रियों को चाहिए कि जितने मनुष्यों से कार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित विद्वान और बड़े–बड़े चतुर प्रधान–उत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े–बड़े कर्मों में और भीरू को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे।[20]

दूत के गुण व कर्त्तव्यः–

किसी भी राज्य के सुचारू रूप से संचालन हेतु चतुर एवं बुद्धिमान दूत को नियुक्त करना बहुत जरूरी है। दूत कैसा होना चाहिए एवं उसके क्या कर्त्तव्य होने, के कतिपय बिन्दु यहाँ दृष्टव्य हैः–

राजा को चाहिए कि अपने राज्य में ऐसे दूत की नियुक्ति करे जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न, चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर ह्रदय और भविष्यत् की घटनाओं को जानने वाला तथा सब शास्त्रों का ज्ञाता हो।[21] वह राजकार्य में उत्साही प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर बहुत पुरानी बातों को भी याद रखने वाला देश और कालानुकूल वर्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूप वाला, निर्भय एवं बड़ा वक्ता हो।[22]

कर्तव्यः–

1.एक चतुर दूत को चाहिए कि वह शत्रु में मेल और मिले हुए दुष्टों को तोड़–फोड़ देवें। वह ऐसा कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े।[23]

2.वह दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जानकर वैसा प्रयत्न करे जिससे अपने को पीड़ा न हो।[24]

दुर्ग निर्माण व्यवस्थाः–

राजा को चाहिए कि अपने राष्ट्र की सुरक्षा हेतु दुर्ग का निर्माण करवाये। यह दुर्ग कैसा होना चाहिए? इस बारे में भी स्वामी जी के महत्वपूर्ण बिन्दू है।

1. नगर के चारों और प्रकोट बनावें, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरूष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं। इसलिए दुर्ग अवश्य बनवाये[25]

2. सुन्दर जंगल, धन–धान्ययुक्त देश में, धनुर्धारी पुरूषों से गहन मिट्टी से किया हुआ, जल से घेरा हुआ, चारों और वन, चारों और सेना रहे अर्थात् चारों और पहाड़ों के बीच में कोट बनाकर इसके बीच में नगर बनावे।[26]

3. वह दुर्गशस्त्र, धन, धान्य, वाहन, बाह्मण जो पढ़ाने उपदेश करने वाले हों, शिल्पी, यन्त्र, नाना प्रकाट की कला, चार घास और जल आदि से सम्पन्न हो।[27]

4. उसके मध्य में जल, वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतर्ण अपने लिए घर जिसमें सब राजकार्यो का निर्वाह हो वैसा बनवावे।[28]

युद्धव्यवस्थाः—

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों और के समाचारों को देने वाले पुरूषें को गुप्त स्थापन करके शत्रुओं की और युद्ध करने जावें।[29]

तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में दूसरा जल (समुन्द्र व नदियों) में तीसरा आकाशमार्गों को युद्ध बनाकर भूमिमार्ग में रथ, अश्व, हाथी जल मे नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावें और पैदक, रथ, हाथी, घोड़े शास्त्र और अस्त्र खानपानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे—धीरे जावे।[30]

जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रखे, गुप्तता से शत्रु को भेद देवे, उस के आने जाने में उस से बात करने में अत्यन्त सावधानी रखे, क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरूष को बड़ा शत्रु समझना चाहिए।[31]

न्याय व दण्ड व्यवस्थाः—

चोर जिस प्रकार जिस—जिस अंग से मनुष्यों में विरूद्ध चेष्ट करता है उस—उस अंग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिए राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे।।[32] चाहे पिता, आचार्य, मित्र,माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता अर्थात् जब न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे यथोचित दण्ड देवे।[33]

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होने चाहिए। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा उससे न्यून सात सौ गुणा और उससे भी न्यून को छः सौ गुणा इसी प्रकार उत्तर—उत्तर जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिए। क्योंकि यदि प्रजा पुरूषों से राजपुरूषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरूष प्रजा पुरूषों का नाश कर देवें, जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। इसलिए राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरूषों को अपराध में प्रजापुरूषों से अधिक दण्ड होना चाहिए।[34]

वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शुद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा दण्ड देना चाहिए।[35] ब्राह्मण को चौसठ गुणा व सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिए अर्थात् जितना जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।[36]

कर व्यवस्थाः—

राजा को चाहिए कि वह राज्य में 'कर' इस प्रकार लगावे कि प्रजाजन सुखपुर्वक फल से युक्त होवें,[37] जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और भ्रमर थोड़े—थोड़े भोज्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार राजा प्रजा से थोड़ा—थोड़ा वार्षिक कर लेवें।[38] राजा को चाहिए कि वह प्रजा से प्राप्त 'कर' आप्त पुरूषों के द्वारा ग्रहण करे और सभापति रूप राजा तथा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के समान बरतें[39]

मनुस्मृति के अनुसारः—

पञ्चाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशु हिरण्योः।
धान्यानामष्टमों भागः षष्ठो द्वादश एव वा।। मनु 7/130

अर्थात् जो व्यापार करने वाले व शिल्पी को सुवर्ण, चाँदी का जितना लाभ हो उसका पचासवाँ भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवाँ व बारहवाँ भाग कर के रूप में लेवे।

यथा राजा तथा प्रजाः— जैसा राजा है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरूषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करे धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें। राजा का धर्म है कि शुक्रनीति तथा विदुर प्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य करे और यह समझें कि 'वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम' अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और प्रमात्मा हमारा राजा हम उस के किंकर भृत्यवत् हैं।

निष्कर्षः–

अतः स्वामी जी के उपर्युक्त राजनीति, राजधर्म सम्बन्धी विचार बिन्दुओं चिन्तन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वामी जी जिस प्रकार राजनीति की चर्चा, देश के लिए स्वराज्य, साम्राज्य और अखण्ड सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य को प्रस्तुत किया है, उसके अध्ययन मात्र से पता चलता है कि उनका धर्म कोरा कर्मकाण्डी सम्प्रदाय नहीं था। वे राजधर्म के उपासक थे। उनका धर्म व्यक्ति के लिए है और व्यक्तियों की इकाई के बाद जब समष्टि का प्रश्न उपस्थित होता है, तब वे उस राजधर्म का प्रतिपादन करते है, जिसकी पहली संख्या स्वराज्य है और उससे अगली है अखण्ड सार्वभौम चक्रवत्तर्ती साम्राज्य। उनकी यह कल्पना और भावना उनके समस्त साहित्य और जीवन में ओत प्रोत है। साम्राज्यवाद के लिए अखण्ड, सावभौम चक्रवत्ती साम्राज्य की कल्पना की थी।

सन्दर्भः–

1.डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार– आर्य समाज का इतिहास (प्रथम भाग) (नई दिल्लीः आर्य स्वाध्याय केन्द्र 1989 ई०) पृ० 417
2.तपत्यादित्यवच्चैव चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
3.सो•ग्निर्भवति वायुश्च सो•र्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।
वही
4.ऋग्वेद3/38/6
5.इन्द्रो जयाति न धरा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईडयो वन्धश्द्योपसद्यो नमस्यो भवेह।।
अथर्व० 6/10/18/1
6.सत्यार्थ प्रकाश षष्ठसमुल्लास
7.शुचिना सत्यसन्धेन यथा शास्त्रनुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता।।
मनु० 7/31
8.सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हाति।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
9.दशकामसमुत्थानि तथाष्टौक्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरूतानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
10.कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीमतिः।
वियुज्यते•र्थधमभ्यिां क्रोधजेष्वात्मनैव तु।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
11.अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ट समुल्लास
12.सत्यार्थ प्रकाश षष्ठसमुल्लासः
13.सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते।
14.सत्यार्थप्रकाश षष्ठसमुल्लास
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
15.नगरे –नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास

16.एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्रय मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याम्याप्लुत्य मध्याहे भोक्तुमन्तः पुरं विशेत्।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
17.स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्ध प्रशमनानि च।
तेषां स्वं स्वमभिप्राय मुपलभ्य पृथक्–पृथक्।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
18.आमात्ये दण्ड आयत्तों दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतो कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
19.निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावते•तन्द्रितान दक्षान् कुलोद्गतान्।।
वही
20.तेषामर्थे नियञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीन आकरकर्मान्ते भीरून् अन्तर्निवेशने।।
सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास
21.दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम्।
इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोदगतान्।।
रितिकर्तव्यत षष्ठ समुल्लास
22.अनुरक्तः शुविर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीत भीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते।।
वही
23.दूत एवं हि सन्धत्ते भिन्तयेव च सहंतान्।
इतस्तत्कुरूते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा।।
वही
24.बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्।।
वही
25.एकः शतं योधयति प्रकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दश सहस्राठि तस्माद् दुर्ग विधीयते।।
वही
26.धनुर्दुगं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
न दुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पूरम्।।
वही
27.तत्स्यादयुधसम्पूनं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणै शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च।।
वही
28.तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जल वृक्षसमान्वितम।।
वही
29.कृत्वा विधान मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृहस्पंद चैव चारान् सभ्यग्विधाय च।।
वही
30.संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलम् स्वकम्।
साम्परायिककल्पेन यायाद् अरितुरं शनैः।।

वही
31.शत्रु सेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः।।
वही
32.येन येन यथाड्गेंन स्तेनो नृषु क्विेष्टते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाथ पार्थिवः।
सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास
33.पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्डयो नाम राज्ञोगएित यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।
वही
34.कार्षापणं भवेछण्डयो यत्रान्यः प्राकृतो जनः
तत्र राजा भवेदण्डयः सहस्रमिति धारणा।।
वही
35.षोडशैव तु वैश्यस्य द्वत्रिंशत्क्षत्रियस्य च।
ब्राह्मणस्य चतुः षष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।।
वही
36.द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तदोष गुण विद्धि सः।
ऐन्द्रं स्थानभिप्रेप्सु र्यशश्चाक्षयमव्ययम्।।
वही
37.यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथा•वेक्ष्य नृपो राष्ट्रो कल्पयेत् सततंकरान्।।
वही
38.सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लासं
39.सांवत्सटिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृपु।।
वही